Volume: 3 Issue: 6 Pages: 30-33

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति

*[1] डॉ. शिव कुमार व्यास

*[1] सह प्राध्यापक, गो.से. अर्थ-वाणिज्य, महाविद्यालय (स्वशासी), जबलपुर, मध्य प्रदेश भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (SJIF): 5.231
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 15/May/2024
Accepted: 13/June/2024

***Corresponding Author**
डॉ. शिव कुमार व्यास
सह प्राध्यापक, गो.से. अर्थ-वाणिज्य, महाविद्यालय (स्वशासी), जबलपुर, मध्य प्रदेश भारत।

सारांश:
अज्ञेय हिन्दी की प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रर्वतक कवि है, साहित्य जगत में उनका प्रवेश उस संधिकाल में होता है जिस काल में छायावादी काव्यधारा मंद हो चली थी और उसका स्थान एक नई काव्यधारा ले रही थी जो नये-नये प्रयोगों से परिपूर्ण थी अब साहित्य शिल्पी नवीन भाव भूमि पर काव्य सृजन कर रहे थे। साहित्य के इस युग में भी कवियों की दृष्टि से प्रकृति ओझल नहीं हुई अपितु अधिक विस्तृत भाव भूमि पर चित्रित हुई। अज्ञेय की प्रकृति चेतना का संबंध सौंदर्य चेतना के साथ-साथ रहस्य चेतना से भी है यही कारण है कि उनकी प्रकृति चित्रण संबंधी कविताओं का कैनवास बहुत विस्तृत एवं व्यापक है, उन्होंने सत्यान्वेषण, सौंदर्य बोध और आत्मबोध प्रकृति से ही प्राप्त किया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानसिक जुड़ाव, दृश्य के साथ अंतदर्शन का संयोग तथा विराट के साथ लघु का मेल उनके प्रकृति चित्रण की विशिष्टता है। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं- ‘‘दुनिया में इतना कुछ, देखने को पड़ा है। क्षण-क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश जिसे उसने आँख भर देखा। इसे देखने से उसे इतना अवकाश कहाँ कि वह निगाह अपनी ओर मोड़े। वह तो जितना कुछ देखता है उससे भी आगे बढ़ने की विवशता में देता है मन को दिलासा, पुनः आऊंगा भले ही बरस दिन अगणित युगों के बाद।

मुख्य शब्द: चीत्कार, इमारती जंगल, आविर्भाव, पिटारा, तराशना, सृजन उपकरण, अभिव्यंजना, परिपाश्र्व, अंतस, कलिका, संवेदना, विहसता, मनोरम, औदात्य, लावण्य, याचक

प्रस्तावना:

मन का आकर्षण सुंदरतम के प्रति हो जाना स्वाभाविक होता है। प्रकृति का रूपगत सौंदर्य और उसमें डूबने की फुर्सत आज व्यस्तता और मानवीय संघर्षों की चीत्कार शहरों नगरों के इमारती जंगलों में रहकर किसी को प्राप्त नहीं। तथापि ह्रदय की संवेदना और अनुभूति बल से सौंदर्य को कौन बचा सकता है, आवश्यकता उस भावुक मन को और उसमें प्रकृति के आकर्षक सौंदर्य के माधुर्य को बनाये रखने की है। काल की गति बीती सोच के दायरे बदले उपमान बदले, उसी बदलाव में प्राचीन अनुभूति और अभिव्यक्ति की कोख से या यों कहें कि उसके छूटे कदमों के निशानों से अविर्भाव हुआ एक नये युग का जिसके पास नयी अवधारणा थी। छायावाद की उजली आँखो और खुले ह्रदय स्थल में प्रकृति ने अपनी जैसे श्रृंगार सेज ही बना ली थी, उत्तरार्द्ध आया टूटन, घुटन उलझन, विखराव के मकड़जालों ने उन सजीली आंखों व रसीले होंठों से प्रकृति को दूर सा कर दिया, कवि उलझ गया, उन्हीं जालों के वर्णन में दर्शन में, गायन में, वहीं कहीं पर एक ह्रदय प्रकृति को अभी भी भीतर समाये इस बिखरती जिंदगी को लहलहाने प्रयासरत था जिसे नाम मिला अज्ञेय।

अज्ञेय जी जहां प्रवर्तक के सिंहासन पर बैठे है, नयी कविता के, वहीं पर छायावाद की छाया से पूर्ण परे भी नहीं है। उन्होंने दो युगों के बीच खड़े होकर मानो दोनों को ही अपनी बाजुऐं सौंप दी थी। प्रकृति के संबंध में अज्ञेय जी ने उसका जीवन से तारतम्य कुछ ऐसा बिठाया है, कि उन्होंने उसमें अपनी काव्य साधना को साध लिया है। उनके सामने एक विशाल पिटारा था जिसमें से उनको, एक-एक चीज की जांच परख करके उसे तराश कर एक नया रूप देना था। पिटारे में थी प्रकृति और उससे लिपटी सिमटी जिंदगी। यूं तो नजर निढाल हो जाये विचार भाव अलाल हो जायें और कलम मंद चाल हो जाये तो सृजन पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। कलाकार का कला के प्रति समर्पण ही उसकी कलामयी जिन्दगी का आधार हुआ करता है। साहित्यकार भी एक कलाकार ही है, जो अपनी साहित्य कला के द्वारा जीवन को सौंदर्य प्रदान करता है, कभी कोई न खोजे न चाहे तो उसे ही उपकरणों का अभाव हो सकता

अन्यथा - सकल पदारथ हैं जग माही
कर्म हीन नर पावत नाहीं

किसी को भी निराशा के दायरों से उबारने में जहां गोस्वामी तुलसीदास जी को ये पंक्तियां पूर्ण सक्षम हैं, वहीं प्रखर शब्दों की कड़ियों में गीत में पिरोने वाले गीतकार शिव मंगल सिंह जी सुमन की ये पंक्तियां नये संघर्षरत् शिल्पियों के लिये अवश्य प्रेरणा पुंज कही जायेगी।

‘‘तुम क्या दिनभर पोथी पत्रा पढ़ते हो,
कैसे शिल्पी हो मूर्ति नहीं गढ़ते हो?
क्या कहते हो उपकरण नहीं मिलते हैं?
फूलों पत्तों में जितने रंग खिलते हैं
तिनकों तिनकों में भी मोती ढलते हैं
चंदा ग्रह तारे ज्योति बीज बोते हैं
उस संध्या जिनमें जगते सोते हैं,
जिसका चटकीला चपला में खुलता है
जिसका भर मैलापन बहार में पलता है।।

अज्ञेय जी ने जीवन से और उसके आसपास से सब कुछ बीना फटका। कुछ भी उनकी नजर में उपेक्षित न रह सका प्रकृति के आंगन में यदि वे भौरे नहीं तो बुलबुल अवश्य थे। अज्ञेय की ‘प्रकृति’ की ओर जो दृष्टि थी, वह अपने विभिन्न रूपों में इठलाती उनके काव्य की शोभा बढ़ाती मेरे अंतर में जैसी उतरी उसका किंचित रूप यहां प्रस्तुत है -
अज्ञेय जी ‘कवि’ होने के नाते एक प्रेमी ह्रदय की धार भी थे। प्रकृति के स्परूप को बसंत की आभा में कचनार के फूल के माध्यम से प्रेम की अभिव्यंजना को आकार देने में कविवर पूर्ण सफल रहे हैं -

प्रार्थना सी अर्धस्फुट
कांपती रहे कली
पत्तियों का सफर
निवेदिता ज्यों अंजली
आये फिर दिन मनहार के, दुलार के
फूल कांचनार के। (32) अज्ञेय की कविता एक मूल्य

अज्ञेय जी का कवि ह्रदय अपने धर्म का निर्वहन करते हुये उत्कट मूल्यवान क्षण में पिरोय गये जीवन के दर्शन प्रकृति के परिपार्श्व में करते हैं? प्रकृति का यही परिवेश उनके अंतस में प्रेम की मिठास व खटास की स्वाद कलिकायें निर्मित कर देता है। निम्न पंक्तियों में बाह्यय तो प्रकृति चित्रण है, किन्तु अंतः में विराट जीवन का बोध -

क्रमशः आये,
दिनचैती: सौगात नयी क्या लाये?
-बाल बिखेरे अपना रूखा सिर घुनती
(नाचे ता थैया)
बेचारी हर झोंके मारी, विरण आकिंचन
सेमर की बुढ़िया मैया (30)

सहसा झरा फूल से मरका
गरिमा वारिम अकेला पहला
क्या टूट चला सपना बसंत का
चैहारा, चैमहवा (31)

विषम युग में डूबती आस्था में भी अभी बात बाकी है, यही संदेश कवि दे रहा है, जगत को, प्रकृति के इस रूप में जो उसकी इन पंक्तियों में खींचा गया है –

‘‘चांद तो थक गया
गगन भी बादलों से ढक गया
अंधकार
घनसार।
अरे! पर देखो तो वे पंक्तियों में
जुगनू टिमक गया!’’ (31)

अज्ञेय जहां प्रकृति का वर्णन कर उससे कुछ ले रहे हैं, वहीं अपने ह्रदय का बहुत कुल मिलाकर जगत हो दे भी रहे हैं वे हिमहत नलिनी को खिलाने से नहीं चूकते हैं।
अज्ञेय जी की कलम प्रकृति को सजा चली तो वहां उनके जीवन की झलक दिखी, उनका प्रेम उनकी पीड़ा, कही सूनापन, कहीं स्मृति जन्य दुख और भाल की अनी सी चुमती बगुलों की डार में समायी प्रेम सी की याद -

मन की एक स्थिति देखिये -
‘‘जी होता है मैं सहसा गा उठूं
उमगते
स्वर जो कभी नहीं भीतर से फूटे
कभी नहीं जो मैंने
कहीं किसी ने - गाये। (25)
और दूसरी स्थिति -
किन्तु अधूरा है, आकाश
हवा के स्वर बंदी हैं
मैं धरती से बंधा हुआ हूँ -
जल तक
नहीं उमगते तुम स्वर में मेरे प्राण स्वर (26)

दूज का चांद जैसे कवि के संवेदनशील ह्रदय में चुभ रहा हो -
‘‘यह लोः
लाली में से उभर चंपई
उठा दूज का चांद कटीला। (26)

कवि में प्रकृति के आंतरिक लय को अनुभूति करने वाली संवेदना रहती है वह अज्ञेय में सहज प्राप्त है।
यादों की बारात कवि के ह्रदयागार के द्वारे पहुंचती है प्रकृति के अनूठे डालों में बैठ तब भाव देखिये पीड़ा का -

‘‘पत्थरों के उन कंगूरों पर
अंजानी गंध सी
अब छा गई होगी
उपेक्षित रात।

हारकर मुरझा गये होंगे
अंधेरे में विचारे-
विरसरे तीली
नदी के दोनों किनारे।
रूके होंगे युगल चकवे,
बांध अंतिम बार
नल पर
वृत मिट जाते दिवस के प्यार का
अपनी हार का। (27)

विरसरे तीली नदी के दोनों किनारे, रात के वक्त हार को स्वीकार कर लेने वाले चकवे के युगल की प्रेम मंग की पीड़ा के दर्शन करते अज्ञेय जी अपने मनिस के अवसाद का हो अवलोकन कराते लगत हैं।
अंगूर की बेल और उसमें फले अंगूरों से किसी और की लार टपके तो टपकती रहे, कविवर अज्ञेय की दृष्टि में वह तीर सी याद होती है, देखिये -

‘‘उलझती बांह सी
दुबलीलता अंगूर की।
क्षितिज धुंधला।
तीर सी यह याद,
कितनी दूर की। (28)

‘मुस्कुराते’ विहँसते रूप से कविवर अज्ञेय इतने प्रभावित नहीं होते कि जीवन की यथार्थता को त्याग दे, भूल जायें वरन् कह उठते हैं -

‘‘ओ विहंसते रूप
तुम कदाचित न भी जानो - यह विदा है’’ (28)

प्रकृति की अंग अंग में अज्ञेय की गहरी दृष्टि और उसकी संवेदना गाहकता देखिये -
पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों सी
बिछी पैरों में नदी, ज्यों दर्द की रेखा विहग-शिशु मौन नीड़ों में
मैने आंख भर देखा।

प्रकृति और जीवन से लगाव में कवि की पुनर्जन्म को आकांक्षा विश्वास और आशा की झलक दृष्टव्य है -

‘‘दिया मन को दिलासा - पुनः आऊंगा
भले ही बरस-दिन-अनगिनत युगों की बाद
क्षितिज ने पलक सी खोली
तमककर दामिनी बोली।
‘अरे, मायावर, रहेगा याद? ’’ (29)

कवि का संवेदनशील मन और खुले नेत्र बिजली के प्रकाश में जीवन के विराट सत्य के दर्शन जिस रूप में करता है, उसका किसी भी संकोच और आवरण से रहित वैसा का वैसा ही बोझिझक प्रस्तुत कर देता है, जिससे चित्र मनोरम और औदात्य से परिपूर्ण हो उठता है - वासना की उग्रता और तीव्रता प्रदर्शन में भी स्थिति प्रेम के वर्णन की तरह ही सिद्धहस्त और पुनीत अभिव्यंजक है -

‘‘घिर गया नभ, उमड़ आये मेघकाले,
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका सा
विशद श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इंद्र का नील वक्ष -
वज्र सा यदि तड़ित सा झुलसा हुआ सा।

वासना के पक सी फैली हुई थी
घारयत्री सत्य सी निर्लज्ज, नंगी
और समर्पित

अज्ञेय जी ने ऋतुराज के संस्पर्श से प्रकृति के नवीन रूप और उसके प्रभाव से चारों ओर फैले श्रंगार जन्य उत्साह का बड़ा ही मधुर वर्णन किया है।
नदी का सिमटना और बादलों में चमक हरियाली का मतवाला पन जैसे जीवन के बड़े तथ्य को प्रकट कर रहा हो।
बैशाख में आंधी को धारे प्रकृति का भयावह रूप का आरेखन कर, मानव मन पर स्नेह प्रेम के परिव्यय की अभिव्यंजना धूल के प्रतीक में कवि ने बहुत बड़े तथ्य को स्पष्ट किया है, कभी इतराने वाले इसी तरह स्नेह जल से सिक्त हो विनम्र हो जाते हैं - देखिये चित्र -

आया पानी।
अरी धूल झगड़ैल
चढ़ी पछवा के कंधों पर तू थी इतराती,
ले काट चिकोटी अब भीः
बस एक स्नेह की बूंद और तू हुई पस्त
पैरों में बिछ-बिछ जाती
सौंधी गंध उड़ाती। (22)

अज्ञेय जी निर्बाध रूप से अपनी अभिव्यक्ति की द्वारा जीवन बोध की प्रकृति के माध्यम से प्रकट करने के विशेषज्ञ जान पड़ते हैं।
कवि का प्रकृति में सूक्ष्म सौंदर्य बोध बड़ा ही रोचक और वास्तविक है। ‘धूप’ जिसे हम घाम कह कर गर्मी में छोड़ने आतुर रहते हैं, तो कभी शीत में उसके पीछे भागते हैं, लेकिन शरीर के द्वारा ही भोगी गई उस धूप में, वह लावण्य नहीं मिल सकता जो कवि कल्पना करके अपने मानस पटल पर आरेखित कर धूप की महत्ता और उसके प्रति रसिक मानस की चाह वर्णित कर रहा है, देखिये -

सूप-सूप भर
धूप कनक
यह सूने नभ में गई विखर
चैंधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर। (20)

अज्ञेय जी की प्रकृति कविता का बिंब उनके विभिन्न उपकरणों उपादानों की सहायता से यथा तथ्य वर्णन कर प्रकृति का और उसकी गोद में किलकारियां भरते जीवन को, संवारता है - मालाबार की एक बाला की ओर खिंचे कवि के ध्यान की जीवंतता - देखिये -

कबरी में खोंस फल
गुड़हल का सुलगे अंगार सा
साड़ी लाल धारे
- ज्वाल माल डाले
मूर्ति आबनूस काठ की -
सेंहुड़ के सामने कटीली खड़ी
बाला मालाबार की। (20)

एंद्रिय बीध में कवि अज्ञेय की कलम रंग रूप, गंध स्पर्श सभी कुछ अमित करती चली गई है -

लाल
अंगारे से डह-डह इस
पंचमुख गुड़हल के फूल को
बांधते रहो नीरव। (44)
(अज्ञेय की काव्य चेतना)

तुम्हारी देह मुझको
कनक चंपे की कली हैं
दूर ही से स्मरण में
गंध देती है।

अज्ञेय जी की कलम प्रकृति की मनोहरता ही नहीं निहारती रही वरन् आदेश देकर एक नवीन जीवन शैली की रहबर भी बता रही -

‘‘कहा सागर नेः चुप रहो
मैं अपनी अबाधता जैसे
सहता हूँ, अपनी मर्यादा
तुम सहो।’’ (47)

(अज्ञेय की काव्य चेतना)

अज्ञेय जी प्रकृति का मानवीकरण करके अपनी भावनाओं को उसके द्वारा संप्रेषित करते बड़े ही स्पष्टवादी और सत्यमना हैं -

''सूनी सी सांझ एक
दबे पांव मेरे कमरे मे आयी थी
मुझको भी वहां देख
थोड़ा सकुचायी थी'' (48)

(अज्ञेय की काव्य चेतना)

जीवन की इस वास्तविकता को कि मनुष्य अर्थात हम और वह कवि भी कितना असमर्थ है, इस संसार में सर्वस्थल वह याचक ही है, वर्तमान में हम दिन में सूर्य की देन प्रकाश में देख पाते हैं, तो रात्रि में स्व निर्मित बिजली के प्रकाश में इनके अभाव में हम असमर्थ हैं देखने में, फिर प्रकृति से तो हमें कितने ही गुण और चाहिये याचना कर बैठा कवि मन जो ठहरा -

''मैने हवा से मांगा: थोड़ा खुलापन - बस एक प्रश्वास
लहर से: एक रोम की सिहरन - भर उल्लास,
मैंने आकाश से मांगी
आंख की झपकी भर असीमता- उधार
सबसे उधार मांगा - सबने दिया
यों मैं जिया और जीता हूँ।'' (48)
(अज्ञेय की काव्य चेतना)

जीवन के प्रति संसार का अमिट सत्य है मृत्यु जीवन की समाप्ति - अज्ञेय जी के प्रकृति की गोद से लिये गये इस उपमति की सटीकता देखिये -

उड़ गई चिड़िया
कांपी फिर
थिर पत्ती
हो गई।

साम्य के लिये देखिये किसी शायर ने भी कहा है,

''जिंदगी मानिंद बुलबुल शाख की
आके बैठी चह चहायी उड़ गयी''

यह अमिट सत्य है, कि प्रकृति माता की गोद ही में जीवन शिशु अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं, अठखेलियों और किलकारियों को बिखेरता अपने विकास के सोपानों को लाँघता है। फिर उलझनों और ऐंठनों के बीच फंसता ऐसी अटल गहराईयों में चला जाता है, कि फिर जिन्दगी उसे ढूंढती है, और वह जिंदगी को। रिश्तों और संबंधों के बंधनों के कसाव उनके टूटने और बनने की खटास व मिठास में मन बोझिल टूटता सा लगने लगता है, तब दामन प्रकृति का, आंचल निसर्ग का, दुलराकर फूंक देता है, नये प्राण इस बुझती काया में।
कविवर अज्ञेय जी ने अपने मन के तारों में जीवन की सरगम उतारी पथरीले कटीले उपमानों से लेकर सुमधुर सजीले भावों की अभिव्यक्ति करके जहाँ वे अपना कवि कर्म रचना धर्म पूर्ण करते हैं वहीं जीवन को नयी दिशा नयी शैली नयी सोच के आमरण भी प्रदान करते हैं।
अज्ञेय जी प्रकृति के रूप, में जीवन को बुनने वाले कुछ ही कवियों में हैं, जहां संकोच नहीं झूठ नहीं सिर्फ सत्य है, वह भी आवरणहीन।

संदर्भ ग्रंथ:

1. अज्ञेय कवि - डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी - ग्रंथम प्रकाशन, राम, कानपुर
2. अज्ञेय - प्रकृतिकाव्य: काव्य प्रकृति संजय कुमार वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. अज्ञेय - कवि और काव्य - राजेन्द्र प्रसाद तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
4. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली
5. अज्ञेय - अरीओ करूणा प्रभामय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
6. अज्ञेय बावरा अहेरी - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
7. अज्ञेय - सुनहरे शैवाल - अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
8. इंद्रधनु रौंदे हुये थे - सरस्वती प्रेस, नई दिल्ली
9. स्नेहलता शुक्ला - अज्ञेय: दृष्टि और सृष्टि - रचना प्रकाशन, जयपुर